जनसत्ता

14 जून, 2019

आतंक की चुनौती

जब भी इस बात के संकेत मिलने लगते हैं कि अब आतंक से त्रस्त कश्मीर में शांति की कोशिशें सकारात्मक रास्ते की ओर जा सकती हैं, तभी आतंकी संगठनों की ओर से कुछ न कुछ ऐसा कर दिया जाता है, जो समूची कवायदों को भटका देता है। बुधवार को एक बार फिर जम्मू-कश्मीर के अनंतनाग में आतंकी हमला हुआ। इससे साफ है कि समस्या के ठोस समाधान की स्थिति पैदा होने से पहले ही आतंकी गिरोह उसे बाधित कर देते हैं। हालांकि जम्मू-कश्मीर पुलिस ने पहले ही आम लोगों की आवाजाही वाली जगहों, खासकर बस स्टैंड पर हमले की चेतावनी साझा की थी। इसके बावजूद अनंतनाग के केपी रोड पर मौजूद एक व्यस्त बस स्टैंड पर आतंकियों ने दिनदहाड़े हमला किया और उन्हें रोकने की पूर्व तैयारी नहीं थी। इस हमले में सीआरपीएफ के पांच जवान शहीद हो गए और तीन अन्य जवान घायल हो गए। हमला होने के बाद जब सुरक्षा बलों ने जवाबी कार्रवाई शुरू की, तो एक आतंकी भी मारा गया।

इस हमले की जिम्मेदारी एक आतंकी गुट अल-उमर मुजाहिदीन ने ली है, जिसे पिछले काफी समय से निष्क्रिय माना जा रहा था। लेकिन जम्मू-कश्मीर में आतंकी गतिविधियों पर नजर रखने वाले अधिकारियों ने इस हमले के पीछे जैश-ए-मोहम्मद का हाथ होने की आशंका जताई है। छिपी बात नहीं है कि घाटी में आतंकवादी संगठनों का एक बड़ा नेटवर्क काम करता है और अलग-अलग चेहरों के साथ हमलों को अंजाम देने और भ्रम पैदा कर सुरक्षा बलों का ध्यान भटकाने की कोशिश करता है। पिछले कुछ समय से जैश-ए-मोहम्मद और लश्कर-ए-तैयबा को केंद्र में रख कर राज्य में आतंकवाद के खिलाफ अभियान चलाए जा रहे हैं। लेकिन अगर पिछले कुछ समय से निष्क्रिय पड़ा कोई संगठन यह दावा करता है, तो उसे भी नजरअंदाज करने की जरूरत नहीं है, भले उसका मकसद महज चर्चा में आना हो। हालांकि राज्य की प्रतिकूल परिस्थितियों में काम करने वाले सुरक्षा बल वहां की जटिलता को ज्यादा बेहतर समझते हैं और उसी के मुताबिक काम करते हैं। मगर जब खुफिया सूचना के बावजूद आतंकी हमले में हमारे पांच जवानों की जान चली जाती है, तो यह सवाल स्वाभाविक है कि सावधानी में चूक कहां हुई!

अक्सर देखा गया है कि जब भी हालात सामान्य होने लगते हैं, तो आतंकी हमले के जरिए एक खास तरह का संदेश देने की कोशिश की जाती है। जाहिर है, वे हमेशा आतंक और अराजकता के हालात बनाए रखना चाहते हैं, ताकि स्थानीय जनता के बीच उन्हें लेकर एक भ्रम बना रहे। इसके पीछे सीमा पार से आतंकवादी संगठनों को मिल रही शह से इनकार नहीं किया जा सकता। खासकर पाकिस्तान स्थित ठिकानों से आतंकी गतिविधियां संचालित करने वाले संगठनों पर लगाम लगाने का सवाल कई बार उठा है। लेकिन इस दिशा में अब तक पाकिस्तान ने ठोस कदम नहीं उठाए। यों कहने को वह अक्सर कहता है कि अपनी सीमा से आतंकी गतिविधियां चलाने की इजाजत नहीं देगा, लेकिन हकीकत किसी से छिपी नहीं है। पुलवामा हमले में बयालीस जवानों की शहादत के बाद माना जा रहा था कि सुरक्षा-व्यवस्था से लेकर खुफिया-तंत्र को इतना मजबूत और सक्रिय किया जाएगा कि वैसी घटना दोबारा न हो। पर ताजा हमले से एक बार फिर यही जाहिर हुआ है कि राज्य में फिलहाल आतंकवादियों को कम करके नहीं आंका जाना चाहिए।

महंगाई की रफ्तार

मुद्रास्फीति के ताजा अंकड़ों में खाने-पीने की वस्तुओं में महंगाई की दर कुछ बढ़ी हुई दर्ज हुई है। मई महीने में बढ़ कर यह 3.05 फीसद पर पहुंच गई। यह आंकड़ा केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय की तरफ से जारी किया गया है। पिछले सात महीनों में इसे सबसे ऊंची दर बताया जा रहा है। अप्रैल में खुदरा वस्तुओं में महंगाई की दर 2.99 फीसद थी, जिसके नीचे गिर कर 2.92 फीसद पर रहने का अनुमान लगाया गया था। मगर वह अनुमान विफल हुआ। खुदरा वस्तुओं में मुद्रास्फीति बढ़ने से आम लोगों को खाने-पीने की वस्तुओं पर अधिक खर्च करना पड़ता है। स्वाभाविक ही इससे न सिर्फ लोगों की जेबों, बल्कि बाजार पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है। मगर पिछले साल की इसी अवधि में मुद्रास्फीति की दर को देखें, तो यह 4.87 थी। उसके बाद पिछले साल अक्तूबर में यह दर घट कर 3.38 फीसद पर पहुंच गई थी। इससे तुलना करें, तो पिछले महीने की खुदरा मुद्रास्फीति दर में वृद्धि को चिंताजनक नहीं कहा जा सकता। मगर सरकार जिस तरह महंगाई की दर पर काबू पाने को लेकर गंभीर है, उसमें यह वृद्धि उसे सोचने पर विवश जरूर करती है।

अप्रैल-मई का महीना खाने-पीने की वस्तुओं के लिहाज से बहुत महंगा नहीं माना जाता, क्योंकि इस मौसम में गेहूं, आलू, प्याज, दालों आदि की बाजार में आवक भरपूर रहती है। सब्जी, खाद्य तेल आदि के मामले में भी किसी तरह की किल्लत नहीं होती। पिछले दो महीनों में मौसम भी खराब नहीं रहा, जिससे कि फसलों पर बुरा असर पड़ा हो। ऐसे में महंगाई की दर कुछ बढ़ी हुई दर्ज हुई है, तो चिंता की बात कही जा सकती है। मगर इसकी कुछ वजहें भी समझी जा सकती हैं। पिछले कुछ समय से डीजल और पेट्रोल की कीमतें लगातार बढ़ी हैं। अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमत बढ़त पर है। फिर ईरान से तेल न खरीद पाने की अमेरिकी बंदिश भी है। सरकार ने कुछ महीने से तेल की कीमतों में वृद्धि को लेकर जो हाथ रोक रखा था, उसे चुनाव बाद खोल दिया है। जाहिर है, जब तेल की कीमतें बढ़ती हैं, तो उसका असर माल ढुलाई पर पड़ता है और जब माल ढुलाई का किराया बढ़ता है, तो उसका असर खुदरा वस्तुओं की कीमतों पर पड़ता है। मुद्रास्फीति के ताजा अंकड़ों के पीछे यह एक बड़ा कारण माना जा सकता है।

हालांकि महंगाई की दर केवल फसलों की आवक, डीजल-पेट्रोल की कीमतों पर निर्भर नहीं होती। इसमें लोगों की क्रयशक्ति, बाजार में पूंजी का प्रवाह आदि तत्त्व भी काम करते हैं। छिपी बात नहीं है कि कुछ समय से इन दोनों पहलुओं पर स्थिति चिंताजनक बनी हुई है। इसीलिए केंद्रीय बैंक ने इस महीने अपनी मौद्रिक नीति में बदलाव करते हुए रेपो दर में पच्चीस आधार अंक की कटौती की। निश्चय ही खुदरा बाजार पर भी इसका सकारात्मक असर नजर आएगा। फिर खेतों से बाजार तक वस्तुओं की समुचित पहुंच न हो पाने से भी खुदरा बाजार की कीमतों में असंतुलन पैदा होता है। कई बार देखा जाता है कि एक ही वस्तु की कीमत में ग्रामीण और शहरी बाजार में भारी अंतर होता है। यह सिर्फ ढुलाई की कीमत बढ़ने की वजह से नहीं, बल्कि कृषि उत्पाद के विपणन की उचित व्यवस्था न होने के कारण भी होता है। महंगाई की दर पर काबू पाने के लिए कृषि उत्पाद की बाजार तक सही ढंग से पहुंच बनाने और भंडारण आदि की सुविधाओं पर गंभीरता से ध्यान देने की जरूरत होती है।

कल्पमेधा

हिंसा और बल प्रयोग अपने पीछे घृणा और दुश्मनी के भाव छोड़ जाते हैं।

-थॉमस ब्राउन

शिक्षा नीति और भाषा का सवाल

कौशलेंद्र प्रपन्न

स्कूली बच्चों का एक बड़ा हिस्सा पढ़ने, अक्षर ज्ञान, लिखने आदि कौशल में पिछड़ रहा है। वे भाषायी पठन, समझ और लेखन कौशल से महरूम रह जा रहे हैं। यही बच्चे जब कॉलेज एवं विश्वविद्यालयों में जाते हैं तो या तो भाषा-अध्ययन छोड़ देते हैं या फिर भाषा एवं साहित्य अध्ययन में रुचि नहीं लेते।

बहुभाषी समाज में हमारी मातृभाषा के अलावा क्षेत्र और राज्य की भाषा भी समाहित होती है। इन्हें अलग कर हम एक धनाढ्य भाषायी परिवार की कल्पना नहीं कर पाएंगे। इन्हें हम विभिन्न शैक्षिक नीतियों और समितियों की संस्तुतियों में भी देख-पढ़ सकते हैं, चाहे त्रिभाषा सूत्र हो या फिर भाषा शिक्षण के प्रति शिक्षाविदों की समीक्षा। इन तमाम दस्तावेजों की रोशनी में देखने की कोशिश करें तो पाएंगे कि 1964-66 की कोठारी समिति में प्रस्तावित त्रिभाषा सूत्र कहीं न कहीं प्रकारांतर से बहुभाषायी परिवेश को मजबूत करने पर बल देता है। भाषा आधारित विमर्श समय-समय पर शैक्षणिक जमीन पर उगते रहे हैं। यदि सावधानी एवं पूर्वाग्रह से हट कर इनकी समीक्षा नहीं की गई और कार्यान्वयन की योजना बना ली तो समस्याएं खड़ी होती हैं। आजादी के बाद और खासकर 1960 के आसपास भाषा को आधार बना कर हुआ देशव्यापी संघर्ष इतिहास में दर्ज है। उसमें एक राज्य या खास भाषा को जब दूसरे राज्यों को भी पढ़ने-लिखने, बोलने के लिए प्रस्तावित किया गया तो उसका विरोध कुछ राज्यों ने किया था।

सन 1986 में हमारी शिक्षा नीति बनी थी। उसके बाद हमारे पास ताजा और समयानुसार शैक्षणिक नीति की आवश्यकता थी। इसमें पूर्व में 2015 से काम होना शुरू हुआ था। हाल ही में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मसौदा विद्वत समाज को सौंपा जा चुका है। इसमें पूर्व में हिंदी भाषा को अन्य राज्यों में भी पढ़ने-पढ़ाने की वकालत की गई थी, जिस पर व्यापक प्रतिक्रियाएं आने लगीं। इन विमर्शों में विरोध के स्वर हिंदी के प्रति तो थे ही। लेकिन यदि कल्पना करें कि हिंदी के स्थान पर संस्कृत, पंजाबी, गुजराती आदि भाषा भी रखी जाती तो विरोध तो उठते ही, बेशक वह राज्य कोई और होता। यदि मंथन करें तो पाएंगे कि भाषाओं को लेकर अपनी-अपनी धारणाएं हर समाज में रही हैं। ऐसे में इस तरह के मामलों में सावधानी और विवेकपूर्ण निर्णय लेना अपेक्षित होता है। तभी इस मसौदे से हिंदी शिक्षण की अनिवार्यता को हटा दिया गया। यदि व्यापक परिदृश्य में समझने की कोशिश करें तो पाएंगे कि भाषाएं हमारे समाज को जोड़ने में एक मजबूत सूत्र के रूप में अपनी भूमिका निभाती हैं। इस सूत्र को पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर इस्तेमाल करने की आवश्यकता है।

प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षण पर बहुत कम सुझाव और रणनीतियां इस शिक्षा नीति में नजर आती हैं। एक बड़ा हिस्सा- 'बाल्यावस्था में देखभाल और शिक्षाः सीखने की बुनियाद' (ईसीसीई) पर खर्च किया गया है। गौरतलब है कि ईसीसीई को शिक्षा के अधिकार अधिनियम से बाहर रखा गया था। इसे भी आरटीई का हिस्सा बनाया जाए, इसको लेकर पिछले छह-सात वर्षों से विभिन्न संस्थाएं वकालत कर रही हैं। आंगनबाड़ी, प्राथमिक स्कूल पूर्व और पूर्व प्राथमिक स्कूलों के साथ कैसे बाल्यावस्था देखभाल एवं रखरखाव को जोड़ा जाए, इस पर यह मसौदा शिद्दत से विमर्श करता है।

भाषायी विमर्श कहीं न कहीं हमें अपनी भाषा-बोली-बानी से जोड़ता है। हमें एक ऐसे बहुभाषी समाज का हिस्सा बनाता है जहां भाषाओं की छटाएं पग-पग पर सुनने, बोलने और पढ़ने को मिलती हैं। भारत की यात्रा पर निकलें तो कुछ-कुछ किलोमीटर पर भाषायी विविधताओं का दर्शन होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि बहुभाषी समाज में जीने वाले व्यक्ति की अभिव्यक्ति क्षमता उसके जीवन के हर क्षेत्र में देखी-सुनी जा सकती है। इस बहुभाषी समाज को बचाए रखने के लिए जरूरी है कि बच्चों को स्कूली शिक्षा से लेकर कॉलेज और विश्वविद्यालयी शिक्षा में बहुभाषायी दक्षता को सीखने का अवसर मिले। हालांकि कई रिपोर्ट हमें समय-समय पर ताकीद करती रही हैं कि हमारे समाज से रोज कोई न कोई भाषा-बोली खत्म हो रही है। बोलियों का लुप्त होना एक गंभीर संकेत है। यह दीगर बात है कि फिर भी हम अपनी भाषा बोली को बचाने, संरक्षण करने, सीखने-सिखाने के प्रति कोई खास गंभीर नजर नहीं आते। इसका एक प्रमाण तो यही है कि हर साल यू-डाईस, असर, पीसा, जीईएमआर आदि की रिपोर्ट इस ओर इशारा करती हैं कि हमारे बच्चों में भाषायी कौशल दिन-प्रतिदिन कम होता जा रहा है। हमारे बच्चे स्कूली स्तर पर भाषा का बुनियादी कौशल भी हासिल नहीं कर पा रहे हैं। स्कूली बच्चों का एक बड़ा हिस्सा पढ़ने, अक्षर ज्ञान, लिखने आदि कौशल में पिछड़ रहा है। भाषायी पठन, समझ और लेखन कौशल से महरूम रह जा रहे हैं। यही बच्चे जब कॉलेज एवं विश्वविद्यालयों में जाते हैं तो या तो भाषा-अध्ययन छोड़ देते हैं या फिर भाषा एवं साहित्य अध्ययन में रुचि नहीं लेते।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रारूप-2019 बड़ी शिद्दत से भाषा शिक्षण, सीखने-सिखाने और बहुभाषा को संरक्षित करने पर जोर देता है। स्कूली स्तर पर बच्चों को किस प्रकार भाषा पढ़ाएं-सिखाएं, इसे लेकर इस प्रारूप के अध्याय-2 में 2025 तक पांचवीं कक्षा एवं उससे ऊपर के सभी विद्यार्थियों के लिए बुनियादी साक्षरता एवं संख्या ज्ञान अर्जित करने की बात कही गई गई है। इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए बच्चों को उनकी मातृभाषा, घर की भाषा, स्थानीय भाषा में शिक्षा दिए जाने पर जोर है। उस अध्याय में नीति स्पष्ट करती है कि किसी भी बच्चे पर अन्य भाषा सीखने के लिए कोई दबाव नहीं बनाया जाएगा, बल्कि बच्चों को उनकी मातृभाषा, घर की भाषा, स्थानीय भाषा में सीखने-सिखाने के अवसर प्रदान किए जाएंगे। इस नीति का मानना है कि बच्चे अपनी मातृभाषा में किसी भी विषय को सहज और रुचि से जल्द सीखते हैं। बच्चों को अपनी भाषा के चुनाव के अवसर भी मिलेंगे, खासकर पांचवीं के बाद और आठवीं कक्षा में अपनी भाषा बदल सकते हैं।

इस नीति में भाषा के चुनाव में लचीलापन रखा गया है। यदि और विस्तार से समझने की कोशिश करें तो पाएंगे कि बच्चों को भाषा सिखाने के लिए जरूरी भाषायी माहौल प्रदान करने वाला प्रावधान भी है कि पहली, दूसरी और तीसरी कक्षाओं में हर दिन गणित और पढ़ने के घंटे एवं चौथी व पांचवीं कक्षा के लिए एक अतिरिक्त घंटा लेखन के लिए तय किया जाए। वर्ष में कई बार भाषा मेला एवं गणित मेला जैसे कार्यक्रम आयोजित हों। साप्ताहिक रूप से भाषा एवं गणित केंद्रित स्कूल सभा हो और भाषा एवं गणित संबंधी गतिविधियों के माध्यम से लेखकों और गतिणज्ञों की वर्षगांठ आदि को उत्सवों के रूप में मनाया जाए।

भाषायी सरोकार को अमलीजामा पहनाने के लिए यह दस्तावेज मानता है कि भाषा-शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया जाएगा। दस्तावेज के अध्याय-22 में कहा गया है कि उच्च शिक्षा संस्थानों में भाषा संकाय की स्थापना की जाएगी, जिनकी जिम्मेदारी होगी कि भाषा शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान करें। ये प्रशिक्षित शिक्षक देश के विभिन्न स्कूलों में अपनी सेवाएं देंगे। नई शिक्षा नीति के इस दस्तावेज के अनुसार तमाम भारतीय भाषाओं के विकास और संरक्षण को बढ़ावा दिया जाएगा। इसके तहत उच्च शिक्षा संस्थानों में शास्त्रीय भारतीय भाषाओं और साहित्य को आगे बढ़ाने के लिए विशेष योजनाएं बनानी चाहिए। पाली, फारसी व प्राकृत भाषाओं के लिए एक राष्ट्रीय संस्था स्थापित की जाएगी। समग्रता में समझने की कोशिश करें तो नीति के स्तर पर भाषा, बहुभाषिकता, भाषा-शिक्षा-शिक्षण आदि पर विशेष बल दिया गया है। हालांकि भाषा शिक्षण इस नीति का एक पक्ष है। इसके अलावा पेशेवर शिक्षक तैयार करना, उनकी कार्यदक्षता और बेहतर शिक्षक बनाने जैसी योजनाओं का जिक्र इसमें है। योजना, नीति आदि के स्तर पर यह दस्तावेज पहली नजर में पूर्ण नजर आता है। लेकिन स्कूलों से लेकर कॉलेज, विश्वविद्यालयों तक में जिस भारी तादाद में शिक्षकों की कमी है, उस सूरत में अलग से भाषा शिक्षकों की नियुक्ति का लक्ष्य हासिल करना आसान नहीं दिखता। एक ओर जब हम पूर्व के रिक्त पदों को नहीं भर पा रहे हैं, ऐसे में नए पदों को कब और कैसे भरेंगे, यह बड़ा सवाल है।

नशे की राह

वंदना तिवारी

दुनिया मेरे आगे

महानगरीय सभ्यता और संस्कृति धीरे-धीरे इतनी डरावनी और विकृत हो रही है कि मनुष्यता का दम घुट जाए। किसी भी समाज का भविष्य वहां के युवा होते हैं। आज युवाओं के बीच नशे का प्रचलन आम है। यह तब और भी दुखद हो जाता है जब इस तरह के नशे के केंद्र विश्वविद्यालय या शैक्षणिक संस्थान भी पाए जाते हैं। पिछले करीब दस सालों के दौरान दिल्ली विश्वविद्यालय परिसर के आसपास शराबखाने, बीयर बार, हुक्का बार आदि की काफी दुकानें खुल चुकी हैं। यह फैशनपरस्ती का नया मुकाम है। तेज आवाज, जिसे शोर कहना ज्यादा सही होगा। कम कपड़ों को आधुनिकता मान कर नशे में झूमते शरीर और भटकते मन अक्सर इन जगहों पर दिखाई देते हैं। स्कूल और कॉलेज में विद्यार्थियों के भीतर भविष्य के सुनहरे रंग भरे जाते हैं। लेकिन आजकल स्कूल और कॉलेज के छात्र और छात्राओं की ऐसी बड़ी तादाद है जो नशे के दलदल में फंसती जा रही है।

नशा शब्द की उत्पत्ति 'नाश' शब्द से हुई है। इस अर्थ की सापेक्षता में हम अंदाजा लगा सकते हैं कि इसका कुप्रभाव कितना गहरा और भयानक होगा। नशे के प्रति युवाओं का आकर्षण सहज न होकर कई बार फैशन के रूप में सामने आता है। शुरुआत में हम नकल करते हुए किसी नशे का स्वाद लेने की कोशिश करते हैं। उसमें दिलचस्पी जगने के बाद हम अक्सर उसका इस्तेमाल करने लगते हैं। धीरे-धीरे वह हमारी आदत में शुमार हो जाता है। संबंधों का अपनापन युवाओं में कमतर हो रहा है। तकनीकी वस्तुओं पर आधारित संवेदनाओं का आदान-प्रदान हमें मानवीय नहीं, मशीनी जीवन में परिवर्तित कर देता है।

संवेदनाएं और उनकी अभिव्यक्ति मनुष्यता और पशुता की विभाजन रेखा है। हमारे आज के युवाओं के अंदर आत्मविश्वास है, पर धैर्य नहीं। किसी भी काम में तुरंत और मनोनुकूल परिणाम की आकांक्षा ने जीवन के संघर्ष की परिभाषा बदल दी है। संबंध बनते हैं, पर टिकते नहीं, क्योंकि संबंध तो हैं, पर उनमें न संवेदना है और न समर्पण। अगर कुछ है तो सिर्फ समीकरण। इन सबका नतीजा है निजता का संकट और संवेदनात्मक असुरक्षा। इन परिस्थितियों में कभी किसी मामूली नशे की संगत में आते हैं और बाद में वही लत में तब्दील हो जाता है और धीरे-धीरे वह नशा हमें सुकून देने लगता है। नशा जीवन की मुख्यधारा से हमें विलग कर तात्कालिक रूप से भौतिक सुखों से जोड़ देता है। लेकिन उस सुख की प्रतिक्रिया बेहद नकारात्मक होती है।

पहले गांव में बड़े-बुजुर्ग के बीच हुक्के का प्रचलन था। इधर के कुछ वर्षों में फिर से हुक्के की आधुनिक शक्ल सामने आई है। इसकी जद में आए युवा हुक्के में नशीले पदार्थों को मिला कर धुएं के छल्लों में अपनी अमूल्य जिंदगी को तलाशते हैं। यह सोच और व्यवहार के बीच पसरा भ्रम ही है कि नशा मस्ती और खुशहाली के रूप में संज्ञापित होने लगा है। लेकिन सच यह है कि जीवन के संघर्षों से पलायन का नाम है नशा। यह हमें एक काल्पनिक लोक में ले जाता है जो यथार्थ से अलग होता है और मानवीय चिंताओं से दूर कर धीरे-धीरे हमारे आत्मविश्वास को निगल लेता है।

नशे में डूबते युवा वर्ग और उसके नतीजों के बेलगाम फैलाव को देखते हुए तो यही लगता है कि इसमें सरकार की मूक भागीदारी है। दरअसल, बाजार का अपना व्याकरण और समाजशास्त्र है। बाजार सिर्फ लाभ के अनुशासन को स्वीकार करता है। नशे के लिए बेची जाने वाले कई वस्तुएं बाजार के लिए काफी लाभप्रद हैं। सस्ती चीजों को आकर्षक रूप में परोस कर युवा पीढ़ी को लुभाना बाजार बेहतर तरीके से जानता है। अगर खुले शब्दों में कहें तो नशे से सबंधित चीजों का अचानक उभार युवाओं के बीच बाजार का एक प्रयोग जैसा है। लेकिन प्रश्न सिर्फ बाजार का नहीं है, हमारे सामाजिक और सरकारी उत्तरदायित्व का भी है। सरकार के न जाने कितने संस्थान और संगठन हैं, जो नशा मुक्ति के कार्यों में संलग्न हैं, लेकिन परिणाम चिंताजनक हैं। बिना सरकार की सहमति से खुलेआम नशे को प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता।

हैरानी तब होती है, जब स्वयंसेवी संगठनों का रुख भी सरकारी संस्थानों जैसा होता जा रहा है। विरोध की जगह सिर्फ खानापूर्ति है। क्या सचमुच हम ऐसे समय और समाज में जी रहे हैं, जहां नैतिक मूल्यों का ह्रास ही हमारी प्रगति का परिचायक बनता जा रहा है? ऐसा लगता है कि समाज किंकर्तव्यविमूढ़ है। न कोई विरोध, न स्पंदन, न हलचल! सबके सब लगभग निर्जीव की तरह व्यवहार शून्य। क्या आने वाली पीढ़ी हमें माफ करेगी? हम उनके लिए कैसा भविष्य बुन रहे हैं? कुछ समय पहले तक नशे के सार्वजनिक प्रदर्शन से युवा परहेज करते थे, लेकिन आजकल नशा सामग्री की सहज उपलब्धता और बेलगाम उपयोग ने सामाजिक डर को खत्म कर दिया है। परिवार, समाज और सरकार की संयुक्त भागीदारी से ही हम इस संकट से युवा पीढ़ी को बचा सकते हैं।

सत्ता और समाज

राजनीति और समाज का अंतर्संबंध तेजी से बदला है। जब कभी सामाजिक आंदोलनों के विस्तार का दौर आया है, तब राजनीति अपनी विलास-सामग्री से नजर हटा कर उन आंदोलनों में शरीक हुई है। राजनीति ने सामाजिक आंदोलनों से उठने वाले सैलाब को नतमस्तक, या कहें मजबूर होकर स्वीकार किया है। यह वह दौर था जब हमारा लोकतंत्र अपनी जड़ें विकसित कर रहा था।

देश के विकासवान लोकतांत्रिक मूल्यों ने राजनीति के भीतर जनहित को स्थापित किया। राजनीति और सत्ताएं तब जनता से भय खाती थीं। इस भय के मूल विश्लेषण की तह में देखने पर एक बात तो साफ हो जाती है कि तब जनता नए-नए लोकतंत्र से मिलने वाले सम्मान और अधिकारों से खुश थी और उसे राजनीति से कुछ अपेक्षाएं व उम्मीदें थीं। जनाकांक्षाएं सत्ता और राजनीति के गलियारों में विलासितापूर्ण रवैयों को कोई अवसर नहीं दे रही थीं। मठाधीशों को यह सब रास नहीं आ रहा था लेकिन देश के तमाम ताकतों के बीच खेलने के आदी नेता सत्ता से बाहर भी नहीं रहना चाहते थे।

वर्तमान राजनीति ने अपना स्वरूप बदला है। टेक्नोलॉजी और सूचना तंत्र का जितना इस्तेमाल देश के नागरिकों को अपनी जागरूकता बनाए रखने के लिए करना जरूरी था, उससे कहीं अधिक इस्तेमाल राजनीतिक पार्टियों ने अपना एजेंडा जमाने में किया। चुनावों में अब पार्टियों को जनता के भीतर भरे उस गुबार को जान पाना कठिन नहीं रह गया, जिसके चलते कई बार मजबूत सरकारों की नींवें तक भरभराकर गिर पड़ीं। अब सूचना-तंत्र के कई मंच विकसित हुए हैं जिनसे हर नागरिक समान रूप से जुड़ा हुआ है। सोशल मीडिया आदि पर जनभावनाओं का अंबार लगा हुआ है। सरकार की अच्छी नीतियों से लेकर गलत निर्णयों तक पर जनता की प्रतिक्रियाएं आसानी से मिल जाती हैं। मीडिया के इस्तेमाल से लैस पार्टियां व सरकारें इन प्रतिक्रियाओं को अपनी अदृश्य उपस्थिति के साथ आकलित करती रहती हैं। इस तरह इन मंचों पर व्यक्त जनाकांक्षाएं व जनाक्रोश से सत्ताएं 'फीडबैक' लेने का कार्य करती हैं और यहीं से राजनीति जनता की भावनाओं का इस्तेमाल करना शुरू कर देती है। जाति, धर्म आदि गुटबंदियों को लेकर जनभावना क्या है, इसका सर्वे करने का काम पार्टी मुख्यालयों से होना शुरू होता है। तमाम तरह के अपराधों में सजा का क्या प्रावधान हो इस बारे में जनता का अधिकांश हिस्सा जिस आक्रोशित बिंदु पर जाकर रुकता है, सरकारें उसकी हिमायती बनने लगती हैं। यह करना उनके लिए आसान होता है।

जनभावनाओं पर इस तरह न्योछावर सरकारों की तारीफें जरूर हो सकती हैं पर यह देखना भी बहुत जरूरी है कि क्या ये सत्ताएं सभी मुद्दों पर यही तरीका अपनाती हैं या फिर चुनिंदा मुद्दों पर। जब इस बिंदु पर गहराई से विचार किया जाता है तो यही निष्कर्ष निकलता है कि सरकारें यहां पर चुनिंदा नजरिये से ही कार्य करती हैं। इससे फायदा यह हुआ है कि अब सामाजिक आंदोलनों का दबाव सरकारों पर कम पड़ता है। अब सत्ता शीर्ष पर बैठे लोग सामाजिक आंदोलनों के वक्त उन्मादी व अराजक मुद्दों पर जनभावनाओं को भड़काने लगते हैं। अब जब भी कोई मुद्दा जनभागीदारी से उठता है तो उसमें पार्टीगत विचारधारा के कार्यकताओं को उस अभियान में प्रतिनिधित्व के लिए भेज दिया जाता है। इससे जनता की मूल मांगें रास्ते से भटक जाती हैं और सरकारों का काम आसान हो जाता है।

● *आशीष कुमार तिवारी, अलीगढ़ विवि*

मौत के बोरवेल

हमारे देश में बोरवेल में बच्चों के गिरने की घटनाएं थम नहीं रही हैं। कई साल पहले प्रिंस नाम का बच्चा बोरवेल में गिर गया था जिसे बचा लिया गया था मगर तब से अनेक मासूम बोरवेल में गिर कर जान गंवा चुके हैं। ताजा घटना पंजाब के संगरूर में हुई है जहां दो साल का बच्चा खेलते-खेलते बोरवेल में जा गिरा। चार दिन तक प्रशासन उसे बचाने में जुटा रहा लेकिन अंत में विफलता हाथ लगी। इन मासूमों की मौत का जिम्मेदार कौन है? आखिर बोरवल खुले छोड़ने वालों पर सख्त कार्रवाई करके ऐसी घटनाओं पर लगाम क्यों नहीं लगाई जा रही है?

● *बृजेश श्रीवास्तव, गाजियाबाद*

त्वरित न्याय

दुष्कर्म के मामलों में अव्वल रहने वाला मध्यप्रदेश अब दुष्कर्म पीड़िताओं को त्वरित न्याय दिलाने में आगे दिखाई दे रहा है। प्रदेश में पिछले साल दुष्कर्म के चौदह मामलों में जिला न्यायालयों ने दुष्कर्मियों को फांसी की सजा सुनाई थी। मंदसौर में आठ वर्षीय बच्ची के साथ दुष्कर्म और हत्या के जघन्य मामले में पुलिस ने वारदात के 42वें दिन चालान पेश कर दिया और अदालत ने 15 दिन के भीतर सजा सुना दी। जब मध्यप्रदेश में के तीन माह भीतर चौदह मामलों में दुष्कर्मियों को सजा सुनाई जा सकती है, तो अन्य राज्यों में ऐसा संभव क्यों नहीं हो पा रहा है? कटनी में तो इसी तरह के मामले में तेरह दिन के अंदर सभी कानूनी प्रक्रियाएं पूरी करके आठ दिन के भीतर चालान पेश कर दिया गया और अदालत ने लगातार पांच दिन सुनवाई करके पीड़िता को त्वरित न्याय दिलाकर इतिहास रचने का काम किया था। इसलिए सरकार को समझ लेना चाहिए कि यौन हिंसा तभी रुकेगी जब क्रूरता का माकूल जवाब दिया जाएगा।

● *रितेश कुमार उपाध्याय, संत कबीर नगर*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com